टिप्पणी

20

भारत में भूमि, मृदा तथा वनस्पति

राष्ट्र की शक्ति; चाहे वह सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक किसी भी परिदृश्य में हो; अधिकतर उसके उपलब्ध संसाधनों और उनके उचित उपयोग पर निर्भर है। लेकिन संसाधन क्या है, यह जानना अति आवश्यक है। साधारणतः संसाधन वह तत्व है जो किसी समय और क्षेत्र में मानव की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करता है। किसी भी तत्व को संसाधन की संज्ञा देने से पूर्व तीन मौलिक बातों का जानना आवश्यक है। ये हैं ज्ञान, तकनीकी कुशलता और वस्तु की मांग अथवा उसके द्वारा प्रदत्त सेवा। इनमें से किसी एक के भी अभाव में विशिष्ट तत्व अनुपयुक्त हो जाता है। इसको हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। अनादिकाल से पृथ्वी पर जल विद्यमान है। लेकिन यह शक्ति का संसाधन तब बना जब मनुष्य ने अपने बौद्धिक कौशल तथा तकनीकी ज्ञान द्वारा जल विद्युत का उत्पादन करना शुरू किया। किसी तत्व की केवल भौतिक उपस्थिति उसे संसाधन नहीं बनाती वरन् मानव की योग्यता एवं आश्यकता उसे संसाधन बनाते हैं। इसलिये संसाधन की आधारभूत संकल्पना मानव के कल्याण या हित में निहित है।

भारत के पास विपुल संसाधन हैं। हमारे देश के द्वारा संभावित संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग संगठित प्रयासों द्वारा किया जा रहा है। यह बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण पोषण में सहायता करता है और रोजगार के अधिकाधिक अवसर प्रदान करता है। साथ ही संसाधनों का विकास किसी देश के आर्थिक संकेतक हैं।

इस संदर्भ में हम इस पाठ में तीन महत्वपूर्ण संसाधनों; भूमि, मृदा तथा वनस्पति के विषय में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- भूमि का संसाधन के रूप में महत्व बता सकेंगे;

टिप्पणी

- भूमि के मुख्य–मुख्य उपयोग पहचान सकेंगे;
- भूमि संसाधन की मुख्य समस्याओं को पहचान कर उनके समाधान के उपाय समझा सकेंगे;
- संसाधन के रूप में मृदा का महत्व बता सकेंगे;
- भारत की प्रमुख मृदाओं की विशेषतायें बता सकेंगे;
- प्रमुख मृदा प्रदेशों को भारत के मानचित्रों में दर्शा सकेंगे;
- भारत के विभिन्न भागों में भूमिक्षरण के विभिन्न कारकों को पहचान सकेंगे;
- मृदा के कटाव के कारण उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को समझा सकेंगे;
- भारत के विभिन्न भागों में मृदा के संरक्षण की अपनाई गई विधियों का संबंध मृदा अपरदन के प्रकार से कर सकेंगे;
- वनस्पति के प्रमुख घटकों को पहचान सकेंगे;
- प्रमुख वनस्पति के प्रकारों को पहचान सकेंगे।

20.1 भूमि संसाधन

भूमि हमारा मौलिक संसाधन है। ऐतिहासिक काल से हम भूमि से ईंधन, वस्त्र तथा निवास की वस्तुएं प्राप्त करते आए हैं। इससे हमें भोजन, निवास के लिए स्थान तथा खेलने एवं काम करने के लिए विस्तृत क्षेत्र मिला है। यह कृषि, वानिकी, पशुचारण, मत्स्यन एवं खनन सामग्री के उत्पादन में प्रमुख आर्थिक कारक रहा है। यह सामाजिक सम्मान, सम्पदा और राजनीतिक शक्ति की प्रमुख आधारशिला है। भूमि संसाधन के कई भौतिक रूप हैं जैसे पर्वत, पहाड़ियाँ, मैदान, निम्न भूमि और घाटियाँ आदि। इस पर उष्ण, शीत, नम एवं शुष्क जैसी विभिन्न जलवायु मिलती है। भूमि विविध प्रकार की वनस्पति का मूल आधार है। अतः किसी स्थान विशेष में भूमि संसाधन का अर्थ है वहाँ की मृदा और उच्चावच लक्षण। इस संदर्भ में भूमि का प्राकृतिक वातावरण से निकटतम् सम्बन्ध है।

कृषि भूमि की उपलब्धता

भारत कृषि भूमि में संपन्न है। यह हमारे सामाजिक और आर्थिक विकास की कुंजी है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का सातवां बड़ा देश है तथा जनसंख्या की दृष्टि से इसका दूसरा स्थान है। कृषि भूमि में वास्तविक बोया गया क्षेत्र, परती भूमि और बागानी भूमि सम्मिलित है। कृषि भूमि का कुल क्षेत्रफल 16.7 करोड़ हैक्टेयर है जो देश की कुल भूमि का 51 प्रतिशत है।

यद्यपि भारत में प्रति व्यक्ति कृषि भूमि–मानव अनुपात में दूसरे देशों जैसे आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमेरिका, चिली, डेन्मार्क एवं मैक्सिको की तुलना में कम है, परन्तु जापान, नीदरलैंड, मिस्र, यूनाइटेड किंगडम, इजराइल तथा चीन की

टिप्पणी

तुलना में अधिक है। भूमि–मानव अनुपात वह अनुपात है जो वास योग्य भूमि के क्षेत्रफल और उस पर रहने वाले लोगों की कुल संख्या के बीच होता है।

भारत के भौतिक लक्षणों में बड़ी विविधता एवं जटिलता है। यहाँ के पर्वत, पहाड़, पठार और मैदानों में मानव की अनुक्रियायें अलग–अलग हैं। इसीलिये इन भौतिक विभागों में भूमि के उपयोग भी अलग–अलग है। भारत के 30 प्रतिशत धरातलीय क्षेत्रफल पर पर्वत और पहाड़ हैं। ये तीव्र ढलान अथवा अत्यधिक ठंडे होने के कारण कृषि के लिये अनुपयुक्त हैं। इस पहाड़ी भूमि का लगभग 25 प्रतिशत भाग खेती करने के योग्य है। इसका वितरण देश के विभिन्न भागों में है। पठारी भाग देश के 28 प्रतिशत धरातलीय क्षेत्रफल को घेरे हुये हैं, लेकिन इसका भी केवल एक चौथाई भाग खेती करने योग्य है। मैदान सारे क्षेत्रफल के 43 प्रतिशत भाग पर हैं और इनका लगभग 95 प्रतिशत भाग खेती के लिये उपयुक्त है। विभिन्न प्रकार की भूमि के अनुपातों को ध्यान में रखकर हम मोटे तौर पर कह सकते हैं कि भारत के सारे धरातलीय क्षेत्रफल का लगभग दो–तिहाई भाग मानव द्वारा उपयोग करने योग्य है। इसके अतिरिक्त मिट्टियाँ, उच्चावच लक्षण, आर्द्रता और तापमान किसी क्षेत्र के भूमि की कृषि क्षमता और उसकी गुणवत्ता की सीमाएँ निर्धारित करने वाले प्रमुख कारक हैं। इन सबके परिणाम स्वरूप हमारे देश के लगभग आधे भूभाग पर खेती होती है। यह अनुपात संसार के सबसे ऊँचे अनुपातों में से एक है।

- भूमि संसाधन का अर्थ है किसी स्थान विशेष की मिट्टियाँ और उच्चावच लक्षण। यह सामाजिक सम्मान, सम्पदा और राजनीतिक शक्ति की प्रमुख आधारशिला है।
- भूमि–अनुपात वह अनुपात है जो वासयोग्य भूमि के क्षेत्रफल और उस पर रहने वाले लोगों की कुल संख्या के बीच होता है।
- भारत में भूमि मानव का अनुपात आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमरीका, चिली, डेन्मार्क और मैक्सिको की तुलना में कम है। इसके विपरीत यह अनुपात जापान, नीदरलैंड, यूनाइटेड किंगडम, इजराइल और चीन से अधिक है।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. भूमि–मानव अनुपात की परिभाषा दीजिए।

   _____

2. उन चार देशों के नाम बताइये जिनमें भूमि–मानव अनुपात भारत की अपेक्षा अधिक है।

   (क) _____ (ख) _____

   (ग) _____ (घ) _____

टिप्पणी

3. उन चार देशों के नाम बताइये जिनमें भूमि–मानव अनुपात भारत से कम है।

(क) _____ (ख) _____ (ग) _____ (घ) _____

20.2 भूमि उपयोग

भारत के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल में भूमि–उपयोग के सांख्यिकीय आंकड़े केवल 30.5 करोड़ हैक्टेयर भूमि के मिलते हैं। शेष 2.3 करोड़ हैक्टेयर भूमि के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी भूमि का सर्वेक्षण नहीं हो पाया है क्योंकि वे अगम्य है। तालिका 20.1 में भूमि उपयोग के उपलब्ध आंकड़े दिये गये हैं। भूमि–उपयोग के विशिष्ट लक्षण निम्नलिखित हैं –

(i) भूमि का अधिक प्रतिशत भाग कृषि योग्य है।

(ii) कृषि क्षेत्र को बढ़ाने की सीमित गुंजाइश है।

(iii) पशुओं की अत्यधिक संख्या होते हुये भी चारागाहों के अन्तर्गत बहुत कम भूमि है।

वर्तमान समय में 4 करोड़ हैक्टेयर भूमि कृषि के लिए अनुपलब्ध है। इस श्रेणी में आने वाला क्षेत्र 1960–61 में 5.07 करोड़ हैक्टेयर से घटकर 1990–91 में 4.08 करोड़ हैक्टेयर रह गया है। थोड़ी सी गिरावट परती भूमि में भी आई है। 1950–51 में 9.9 प्रतिशत से 1990–91 में 7.5 प्रतिशत हो गयी है। कृषि योग्य बंजर भूमि में भी 1950–51 और 1990–91 के बीच 34 प्रतिशत की प्रशंसनीय गिरावट आई है। 1950–51 और 1990–91 के बीच शुद्ध बोये गये क्षेत्र में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

1950–51 में इस भूमि का क्षेत्रफल 11.87 करोड़ हैक्टेयर था जो 1990–91 में बढ़कर 14.24 करोड़ हैक्टेयर हो गया। 1990–91 में शुद्ध बोये गये क्षेत्र के 14 प्रतिशत भाग अर्थात 4.17 करोड़ हैक्टेयर भूमि से दो या दो से अधिक फसलें प्राप्त की गई। सबसे चकित कर देने वाली बात यह है कि भारत में विश्व के सर्वाधिक पशुओं के होते हुये भी यहाँ स्थाई चारागाह के लिये केवल 5 प्रतिशत भूमि है। अर्थव्यवस्था की लगातार वृद्धि के कारण गैर–कृषि कार्यों में भूमि का उपयोग बढ़ रहा है।

तालिका 20.1
भारत में भूमि उपयोग

	श्रेणी	क्षेत्रफल (करोड़ हैक्टयर में)	सम्पूर्ण सूचित क्षेत्रफल का प्रतिशत
1.	शुद्ध (वास्तविक) बोया गया क्षेत्र	14.24	46.30
2.	चालू परती भूमि	1.37	4.20
3.	अन्य परती भूमि	0.97	3.00
4.	चारागाह एवं उद्यान	1.54	5.00

टिप्पणी

5.	कृषि योग्य बंजर भूमि	1.50	4.70
6.	कृषि के लिये अनुपलब्ध भूमि		
	(i) बंजर एवं अकृषित भूमि	1.96	6.20
	(ii) गैर–कृषि कार्यों में उपयोग की गई भूमि	2.12	8.60
7.	वन भूमि	6.80	22.00
	योग	**30.50**	**100.00**

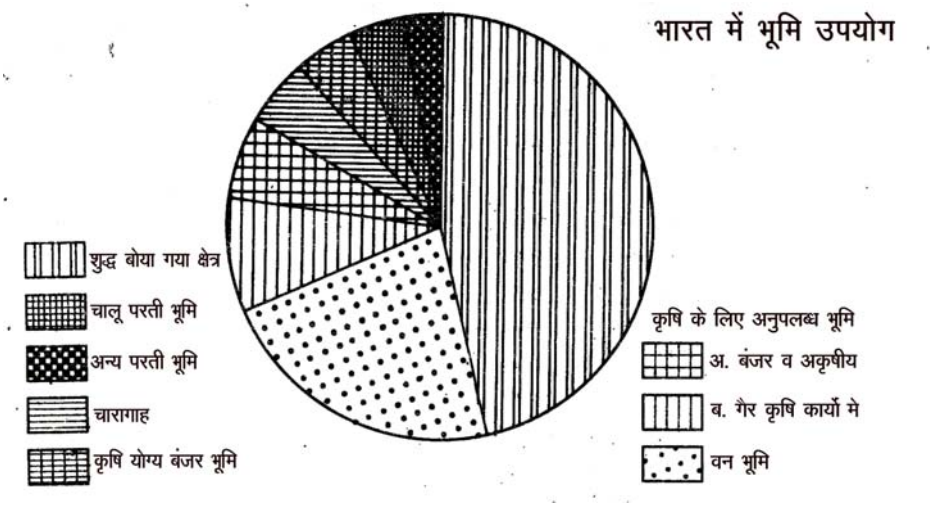

चित्र 20.1 भारतः भूमि उपयोग

औद्योगीकरण और नगरीकरण की माँग को पूरा करने हेतु सड़कों, रेलमार्गों, हवाई मार्गों, मानव बस्तियों, कारखानों और बहु उद्देशीय परियोजना के विशाल बाँधों के लिये अधिकाधिक भूमि का उपयोग हो रहा है। भूमि के सारे सांस्कृतिक उपयोग इसी सीमित कुल क्षेत्रफल में ही आते हैं। अतः स्पष्ट है कि भूमि के ये सारे उपयोग भी कृष्य भूमि पर ही हो रहे हैं। 1950–51 में गैर–कृषि कार्यों को दी जाने वाली भूमि 93 लाख हैक्टेयर थी जो 1990–91 में बढ़कर 2.12 करोड़ हैक्टेयर हो गई।

भारत में वनों के अन्दर भूमि का प्रतिशत संसार में कम पाये जाने वाले देशों में से एक है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 22 प्रतिशत भाग पर वन हैं जबकि इसका संसार का औसत 30 प्रतिशत है। भूमि उपयोग के आंकड़ों के अनुसार 1950–51 में वन–भूमि का क्षेत्रफल 4 करोड़ हैक्टेयर था जो 1990–91 में बढ़कर 6.8 करोड़ हैक्टेयर हो गया। यह देश के स्वीकार किये लक्ष्य अर्थात देश के कुल क्षेत्रफल के एक–तिहाई भाग से बहुत कम है।

टिप्पणी

इस प्रकार भूमि–उपयोग एक गतिमान प्रक्रिया है। इसमें समय के साथ बदलाव कई कारणों से होते रहते हैं। इन कारणों में बढ़ती जनसंख्या तथा फसल व्यवस्था और तकनीकी बदलाव का प्रमुख स्थान है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र जैसे–जैसे विकसित होते जाते हैं उनके कारण भूमि उपयोग का प्रारूप भी बदलता जाता है। फिर भी भूमि का अधिकतर भाग कृषि कार्यों में ही प्रयोग किया जा रहा है। कृषि भूमि पर लगातार जनसंख्या वृद्धि का दबाव निश्चय ही बढ़ रहा है। यह हमारी राष्ट्रीय समस्या है जिसके निदान के लिये सतत प्रयास की आवश्यकता है।

20.3 भूमि की समस्यायें

भूमि के कुल क्षेत्रफल में से 17.5 करोड़ हैक्टेयर भूमि का क्षरण हो रहा है। भूमि क्षरण का मुख्य कारण मृदा अपरदन है। भूमि में जलाक्रान्ति होने और उसकी लवणता बढ़ने से भी भूमि का क्षरण होता है। वनों की अंधाधुन्ध कटाई के कारण मृदा का बड़े पैमाने पर अपरदन हो रहा है। मानसून की अवधि में भारी वर्षा भी मृदा अपरदन का कारण बनती है। हिमालय के दक्षिणी और पश्चिमी घाट के पश्चिमी तीव्र ढलानों पर विशेषतया जल के तेज बहाव के कारण मृदा अपरदन होता है। हिमालय के वृहत् भागों में भूस्खलन और अपरदन होते रहते हैं। राजस्थान में वायु अपरदन और चम्बल घाटी, छोटा नागपुर, गुजरात तथा पंजाब हिमालय के निचले भागों में अवनालिका अपरदन बड़े पैमाने पर होता है। भूमि की जलाक्रान्त और लवणीय प्रक्रिया से 1.3 करोड़ हैक्टेयर भूमि का क्षरण हो चुका है तथा इसमें और भी वृद्धि होती जा रही है। इस प्रकार की प्रभावित भूमि अधिकतर नहरी सिंचाई के क्षेत्रों में पाई जाती है। इन क्षेत्रों में जल का निकास ठीक न होने के कारण भूमि खराब हो गई है। देश के बहुत से भागों में खनन क्रिया के कारण भी भूमि का क्षरण हुआ है। खनन द्वारा प्रभावित भूमि का क्षेत्रफल लगभग 80 हजार हैक्टेयर है। कृषि भूमि पर नगरीय अतिक्रमण के कारण भी खेती की भूमि का भाग कम हो रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कृषीकरण, नगरीकरण और औद्योगीकरण के बीच तीव्र होड़ चल रही है। भूमि के स्वामित्व, उसके बेचने और खरीदने के संबंध में भी बहुत से सामाजिक झगड़े हो रहे हैं। काश्तकार कई तरह से हतोत्साहित हो रहा है, जैसे खेत के छीने जाने का भय, ऊँचा लगान और लागत के लिये अपर्याप्त बचत। भूमि सीमा के कानूनों का परिपालन पर्याप्त कठोरता से नहीं किया गया है।

20.4 भूमि की समस्याओं के समाधान

भूमि की समस्याओं के समाधान के लिये देश में भौतिक और सामाजिक दो दृष्टिकोण अपनाये गये हैं। जलाक्रान्त मृदा को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा भूमि का भौतिक उद्धार किया जा रहा है। इसके बाद इस भूमि पर वैज्ञानिक ढ़ंग से शस्यावर्तन अपनाया जाता है। इसी प्रकार वह भूमि जो नदी–क्रियाओं और नदी की बाढ़ों द्वारा बेकार हो गई है, इसका उद्धार आवश्यक क्रियाओं द्वारा करके उसकी उर्वरता वापिस लाई जाती है। मरुस्थली भूमि के भौतिक उद्धार के लिये सत्त प्रयास किये जाते हैं। इसके लिये उपयुक्त प्राकृतिक वनस्पति उगाना और सिंचाई की सुविधायें प्रदान करना जरूरी है।

टिप्पणी

इससे भूमि जलस्तर के ऊपर उठने में मदद मिलती है। सामाजिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत राज्य द्वारा ऐसे कानून लागू किये जाते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य उत्पादकता बढ़ाना कृषि को बढ़ावा देना आदि के द्वारा ग्रामीण पुनर्निर्माण हैं। चकबन्दी, काश्तकार के खेतों का मालिकाना अधिकार देना, जमींदारी उन्मूलन आदि कई कानून बनाये गये। इस प्रकार कानून द्वारा काश्तकार को सामाजिक न्याय दिलाया गया है।

दूरसंवेदन द्वारा प्राप्त जानकारी के अनुसार कच्छ की खाड़ी का लगभग 200 वर्ग मिलोमीटर क्षेत्र अवसादों के जमाव से भर गया है। नेशनल रिमोट सेन्सिंग एजेन्सी ने अनुमान लगाया है कि देश में 5.3 करोड़ हैक्टेयर (16 प्रतिशत) भूमि बंजर है। इसमें से सर्वाधिक भूमि (60 प्रतिशत) जम्मू और कश्मीर में है। इसके बाद राजस्थान (38 प्रतिशत), सिक्किम (60 प्रतिशत), हिमाचल प्रदेश (37 प्रतिशत) और गुजरात (17 प्रतिशत) के स्थान हैं। भारत सरकार ने 1985 में राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड की स्थापना बंजर भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिये की है। यह संस्था प्रतिवर्ष 50 लाख हैक्टेयर भूमि पर वनरोपण के कार्यक्रम को पूरा करने की कोशिश कर रही है।

भारत में भूमि की कमी नहीं है। परन्तु खाद्य पदार्थों के उत्पादन को और अधिक बढ़ाने के लिये भूमि सुधार संबंधी नीतियों की पुनः स्थापना करने की आवश्यकता है।

- भूमि–उपयोग गतिमान प्रक्रिया है। यह कई कारकों के परिणाम स्वरूप समय–समय पर बदलता रहता है। जनसंख्या वृद्धि और शस्य प्रणाली एवं तकनीकी बदलाव इसके प्रमुख कारक है। अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों में विकास के परिणामस्वरूप भी भूमि उपयोग के प्रारूप में बदलाव आता है।
- मृदा अपरदन, भूमि की जलाक्रान्ति, लवणीकरण, खनन और कृषि भूमि पर नगरों का अतिक्रमण आदि के परिणामस्वरूप कृषि भूमि का ह्रास हो रहा है।
- भारत ने भूमि विकास के दो तरीके अपनाये हैं– (क) भौतिक (भूमि उद्धार) और (ख) सामाजिक (भूमि सुधार)

पाठगत प्रश्न 20.2

1. उन तीन विशिष्ट क्षेत्रों के नाम बताइये जहाँ अवनालिका अपरदन मुख्य रूप से होता है।
   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____
2. मृदा अपरदन का सबसे महत्वपूर्ण कारक क्या है?
   _____
3. भूमि सुधार के लिए दो तरीके बताइए?
   (क) _____ (ख) _____
4. वायु अपरदन किस क्षेत्र में अधिक होता है?
   _____

टिप्पणी

20.5 मृदा संसाधन

असंगठित पदार्थों से बनी पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत को मृदा कहते हैं। यह अनेक प्रकार के खनिजों, पौधों और जीव–जन्तुओं के अवशेषों से बनी है। यह जलवायु, पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं और भूमि की ऊँचाई के बीच लगातार परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप विकसित हुई है। इनमें से प्रत्येक घटक क्षेत्र विशेष के अनुरूप बदलता रहता है। अतः मृदाओं में भी एक स्थान से दूसरे स्थान के बीच भिन्नता पाई जाती है। मृदा पारितंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि यह पेड़–पौधों का आश्रय स्थल होने के साथ उन्हें पोषक तत्व प्रदान करने का मुख्य स्रोत है। इस प्रकार मृदा पौधों की वृद्धि के लिये सुरक्षित आधार एवं मौलिक कच्चा माल प्रदान करने का माध्यम है। मृदा अपनी तुलनात्मक उर्वरता के द्वारा मानव की आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित और अपने देश की नियति का निर्धारण करती है। मृदा के नष्ट होने के साथ ही सम्पत्ति एवं संस्कृति दोनों की ध्वस्त हो जाती है। इसीलिये मृदा भारत की बहुमूल्य राष्ट्रीय एवं मौलिक भू–संपदा है।

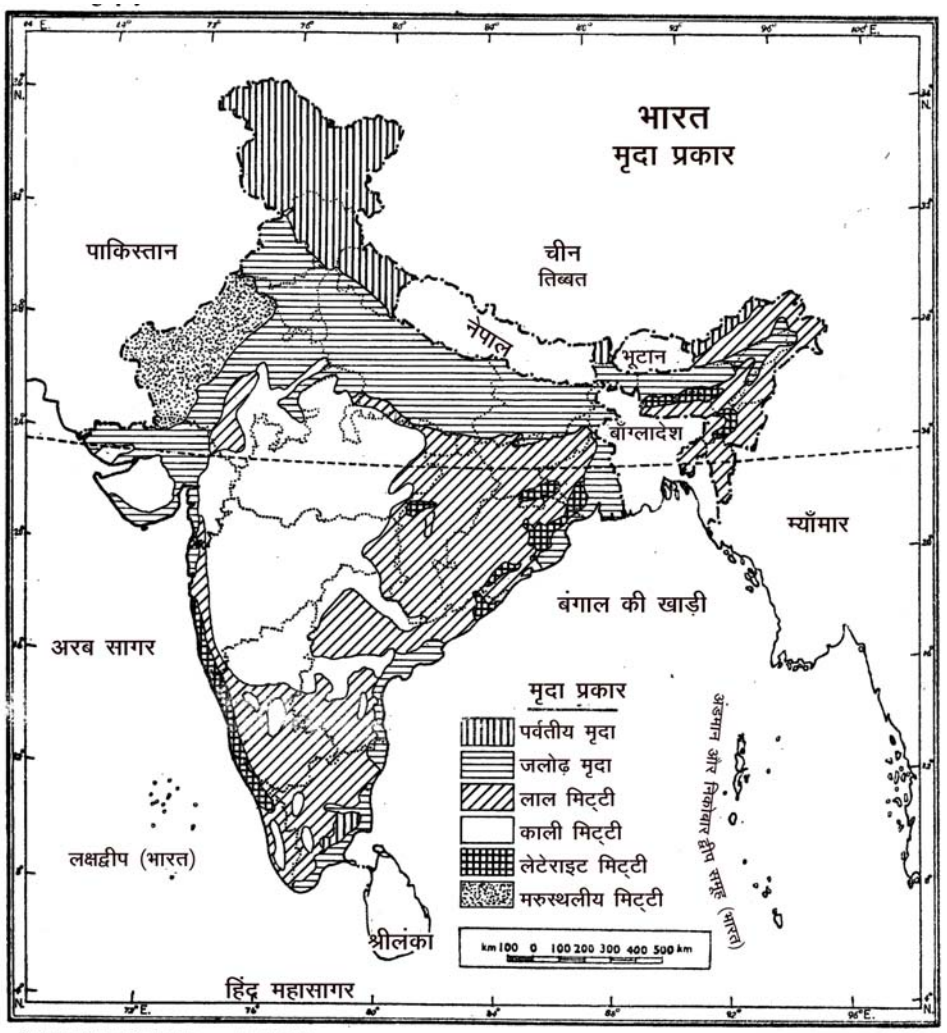

चित्र 20.2 भारतः प्रमुख मृदाएँ

टिप्पणी

20.6 मृदाओं के प्रमुख प्रकार

भारत की मृदाओं को निम्नलिखित छः प्रकारों में बाँटा जाता है :

(क) जलोढ़ मृदा

जलोढ़ मृदाएँ भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण मृदाएँ हैं। सतलुज, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के विस्तृत घाटी क्षेत्रों और दक्षिणी प्रायद्वीप के सीमावर्ती भागों में पाई जाती हैं। भारत की सबसे उपजाऊ भूमि के 6.4 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में जलोढ़ मृदाएँ फैली हुई हैं। जलोढ़ मृदाओं का गठन बलुई–दोमट से मृत्तिका–दोमट तक होता है। इसमें पोटाश की अधिकता होती है, लेकिन नाइट्रोजन एवं जैव पदार्थों की कमी होती है। सामान्यतया ये मृदाएँ धुंधले से लालामी भूरे रंग तक की होती हैं। इन मृदाओं का निर्माण हिमालय पर्वत और विशाल भारतीय पठार से निकलने वाली नदियों द्वारा बहाकर लाई गई गाद और बालू के लगातार जमाव से हुआ है। तरुण होने के नाते इन मृदाओं में परिच्छेदिका के विकास की कमी है। अत्यधिक उत्पादक होने के नाते इन मृदाओं को दो उप–विभागों में बाँटा गया है: नवीन जलोढ़क (खादर) और प्राचीन जलोढ़क (बांगर)। दोनों प्रकार की मृदाएँ संरचना, रासायनिक संघटन, जलविकास क्षमता एवं उर्वरता में एक दूसरे से भिन्न हैं। नवीन जलोढ़क हल्का भुरभुरा दोमट है जिसमें बालू और मृत्तिका का मिश्रण पाया जाता है। यह मृदा नदियों की घाटियों, बाढ़ मैदानों और डेल्टा प्रदेशों में पाई जाती है। इसके विपरीत प्राचीन जलोढ़क दोआबा (दो नदियों के बीच की ऊँची भूमि) क्षेत्र में पाया जाता है। मृत्तिका का अनुपात अधिक होने के कारण यह मृदा चिपचिपी है और जलनिकास कमजोर है। इन दोनों प्रकार की मृदाओं में लगभग सभी प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं।

(ख) काली मृदाएँ (रेगड़ मृदा)

काली मृदा दक्कन के लावा प्रदेश में पाई जाती है। यह मृदा महाराष्ट्र के बहुत बड़े भाग, गुजरात, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ भागों में पाई जाती है। इस मृदा का निर्माण ज्वालामुखी के बेसाल्ट लावा के विघटन के परिणामस्वरूप हुआ है। इस मृदा का रंग सामान्यतया काला है जो इसमें उपस्थित अलुमीनियम और लोहे के यौगिकों के कारण है। इस मृदा का स्थानीय नाम रेगड़ मिट्टी है और यह लगभग 6.4 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर फैली है। यह सामान्यतया गहरी मृत्तिका (चिकनी मिट्टी) से बनी है और यह अपारगम्य है या इसकी पारगम्यता बहुत कम है। मृदा की गहराई भिन्न–भिन्न स्थानों में अलग–अलग है। निम्न भूमियों में इस मृदा की गहराई अधिक है जबकि उच्चभूमियों में यह कम है। इस मृदा की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि शुष्क ऋतु में भी यह मृदा अपने में नमी बनाये रखती है। ग्रीष्म ऋतु में इसमें से नमी निकलने से मृदा में चौड़ी–चौड़ी दरारें पड़ जाती है और जल से संतृप्त होने पर यह फूल जाती है और चिपचिपी हो जाती है, इस प्रकार मृदा पर्याप्त गहराई तक हवा से युक्त और आक्सीकृत होती है जो इसकी उर्वरता बनाये रखने में मदद देते हैं। मृदा की इस प्रकार लगातार उर्वरता बनी रहने के कारण यह कम वर्षा के क्षेत्रों में भी बिना

टिप्पणी

सिंचाई के कपास की खेती करने के लिये अनुकूल है। कपास के अतिरिक्त यह मृदा गन्ना, गेहूँ, प्याज और फलों की खेती करने के लिये अनुकूल है।

(ग) लाल मृदा

प्रायद्वीपीय पठार के बहुत बड़े भाग पर लाल मृदा पाई जाती हैं, इसमें तमिलनाडु, कर्नाटक, गोवा, दक्षिण–पूर्व महाराष्ट्र, आँध्र प्रदेश, उड़ीसा, छोटानागपुर पठार और मेघालय पठार के भाग सम्मिलित हैं। लाल मृदा के ये क्षेत्र कपास की काली मृदा के भूभाग को घेरे हुये हैं। यह मृदा ग्रेनाइट और नींस जैसी रवेदार चट्टानों पर विकसित हुई है और यह कृषि भूमि के 7.2 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र पर फैली है। इस मृदा में लोहे के यौगिकों की अधिकता के कारण इसका रंग लाल है, परन्तु इसमें जैव पदार्थों की कमी है। यह मृदा सामान्यतया कम उपजाऊ है और काली मृदा अथवा जलोढ़ मृदा की तुलना में लाल मृदा का कृषि के लिये कम महत्त्व है। परन्तु इसकी उत्पादकता सिंचाई और उर्वरकों के प्रयोग द्वारा बढ़ाई जा सकती है। यह मृदा चावल, ज्वार–बाजरा, मक्का, मूँगफली, तम्बाकू और फलों की पैदावार के लिये उपयुक्त है।

(घ) लैटराइट मृदा

लैटराइट मृदा कर्नाटक, तमिलनाडृ, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, उड़ीसा, असम और मेघालय के ऊँचे एवं भारी वर्षा वाले भूभागों में पाई जाती है। इस मृदा का विस्तार 1.3 करोड़ हैक्टेयर से भी अधिक क्षेत्रफल पर है। इस मृदा का निर्माण उष्ण एवं आर्द्र जलवायु दशाओं में होता है। लैटराइट मृदा विशेषतया ऋतुवत भारी वर्षा वाले ऊँचे सपाट अपरदित सतहों पर पाई जाती है। तीव्र निक्षालन क्रिया द्वारा पोषक तत्वों का नाश हो जाना, इस मृदा का सामान्य लक्षण है। इस मृदा का पृष्ठ गिट्टीदार होता है। जो आर्द्र और शुष्क अवधियों के प्रत्यावर्तन के परिणामस्वरूप बनता है। अपक्षय के कारण लैटराइट मृदा अत्यन्त कठोर हो जाती है, इस प्रकार लैटराइट मृदा की प्रमुख विशेषतायें हैः जनक शैल का पूर्णतया रासायनिक विघटन, सिलिका का सम्पूर्ण निक्षालन, अलुमीनियम और लोहे के ऑक्साइडों द्वारा मिला लाल–भूरा रंग और ह्यूमस की कमी। इस मृदा में पैदा की जाने वाल सामान्य फसलें चावल, ज्वार–बाजरा और गन्ना निम्न भूमियों में और रबर, कहवा तथा चाय जैसी रोपण फसलें उच्च भूमियों में है।

(ङ) मरूस्थलीय मृदा

मरूस्थलीय मृदाएं पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ, पश्चिमी हरियाणा और दक्षिणी पंजाब में पाई जाती है। इन क्षेत्रों में इस मृदा के पाये जाने का सीधा संबन्ध वहाँ पर विद्यमान मरुस्थलों एवं अर्ध–मरुस्थलों की दशाओं का होना तथा छः महीनों तक पानी की अनुपलब्धता है। जैव पदार्थों की कमी सहित बलुई एवं पथरीली मृदा, ह्यूमस का कम होना, वर्षा का कभी–कभी होना, आर्द्रता की कमी और लम्बी शुष्क ऋतु मरुस्थलीय मृदा की विशेषतायें हैं। इस मृदा में संस्तरों का विकास कम हो गया है। इस मृदा के क्षेत्र में पौधे एक दूसरे से बहुत दूरी पर मिलते हैं। रासायनिक अपक्षय

टिप्पणी

सीमित है। मृदा का रंग लाल या हल्का भूरा हैं। सामान्यतया इस मृदा में कृषि के लिये आधारभूत आवश्यकताओं की कमी है। परन्तु जब पानी उपलब्ध होता है तो इससे विविध प्रकार की फसलें जैसे कपास, चावल, गेहूँ आदि उर्वरकों की उपयुक्त मात्रा देकर पैदा की जा सकती है।

(च) पर्वतीय मृदा

पर्वतीय मृदाएँ जटिल है और इनमें अत्यधिक विविधता मिलती है। यह नदी द्रोणियों और निम्न ढलानों पर जलोढ़ मृदा के रूप में पायी जाती है। ऊँचे भागों पर अपरिपक्व मृदा या पथरीली है। पर्वतीय भागों में भू आकृतिक, भूवैज्ञानिक, वानस्पतिक एवं जलवायु दशाओं की विविधता तथा जटिलता के कारण यहाँ एक ही तरह की मृदा के बड़े–बड़े क्षेत्र नहीं मिलते। खड़े ढाल वाले उच्चावच प्रदेश मृदा विहीन होते हैं। इस मृदा के विभिन्न प्रदेशों में अलग–अलग प्रकार की फसलें उगाई जाती है, जैसे चावल नदी घाटियों में, फलों के बाग ढलानों पर और आलू लगभग सभी क्षेत्रों में पैदा किया जाता है।

20.7 मृदा अपरदन

मृदा को अपने स्थान से विविध क्रियाओं द्वारा हटाया जाना मृदा अपरदन कहलाता है। यह प्राकृतिक कारकों जैसे जल, पवन, हिमानी और जल की लहरों द्वारा एक प्रकार की मृदा की चोरी है। गुरूत्वबल के कारण पहाड़ी ढलानों पर मृदा नीचे की ओर शनैःशैनैः गतिमान होती है जिसे मृदा–सर्पण कहते हैं अथवा यह भूस्खलन द्वारा तीव्र गति से नीचे आ सकती है। भूमि का वर्तमान स्वरूप हजारों लाखों वर्षों की काट–छाँट द्वारा बना है। मृदा अपरदन आज की पर्यावरणीय समस्याओं में से एक प्रमुख समस्या है और यह कृषि के उत्पादन में गंभीर रुकावट है। मृदा अपरदन की विकरालता एवं उसके फैलाव को कई भौतिक एवं सामाजिक कारक निर्धारित करते हैं। प्रमुख भौतिक कारक हैः वर्षा की अपरदनकारी शक्ति, मृदा की अपनी कटाव क्षमता, आवर्ती बाढ़ों की तीव्रता, ढलान की लम्बाई और तीव्रता। प्रमुख सामाजिक कारक हैः वनों की कटाई, अतिचराई, भूमि उपयोग की प्रकृति और खेती करने की विधियाँ। भूमि अपरदन के गंभीर एवं अत्यन्त स्पष्ट रूप खड्ड, अवनालिकायें और भूस्खलन हैं। इसके दूसरी ओर वर्षा द्वारा किया गया परत–अपरदन और पवन द्वारा किया गया अपरदन यद्यपि स्पष्ट रूप से बहुत कम दिखाई देते हैं परन्तु ये भी इतने ही गंभीर हैं क्योंकि उनके द्वारा भारी मात्रा में मृदा की बहुमूल्य ऊपरी परत नष्ट हो जाती है। भारत में खड्डों और अवनालिकाओं द्वारा हुए मृदा के अपरदन से 36.7 लाख हैक्टेयर भूमि को नुकसान हुआ है। भारत में खड्डों और अवनालिकाओं के चार प्रमुख क्षेत्र हैंः (1) यमुना–चम्बल खड्ड क्षेत्र (2) गुजरात खड्ड क्षेत्र (3) पंजाब शिवालिक गिरिपाद क्षेत्र और (4) छोटा नागपुर क्षेत्र। इनके अतिरिक्त खड्ड अपरदन के कुछ ठोस उदाहरण महानदी की घाटी, ऊपरी सोन घाटी, ऊपरी नर्मदा और तापी की घाटियों, शिवालिक तथा पश्चिमी हिमालय के गिरिपाद वाली भाबर भूमि और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में

टिप्पणी

गंगा–खादर के सीमान्त में मिलते हैं। खड्ड और अवनालिका अपरदन से सबसे कम प्रभावित क्षेत्र हैं, गोदावरी के दक्षिण में पूर्व दक्कन क्षेत्र, गंगा ब्रह्मपुत्र के मैदान, कच्छ और पश्चिमी राजस्थान। परत अपरदन के प्रमुख क्षेत्र हैं ढालू भूमि, प्रायद्वीपीय प्रदेश की बिना सीढ़ी वाली उच्च भूमियाँ, सतलुज–गंगा का मैदान, तटीय मैदान, पश्चिमी घाट और उत्तर–पूर्वी पहाड़ियाँ।

भूस्खलन सामान्यतया भूकंप वाले क्षेत्रों, विशेषतया शिवालिक के भागों में होते रहते हैं। भारी वर्षा और सड़कों तथा इमारतों को बनाने के लिये ढलानों को काटने एवं खनन क्रियाओं के कारण भी भूस्खलन होते हैं। गत पचास वर्षों में राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, और उत्तर प्रदेश में मरूस्थल का अतिक्रमण हुआ है। इससे 13000 हैक्टेयर भूमि प्रभावित हुई है। हिमानी द्वारा अपरदन हिमालय के उच्च भागों में और समुद्री लहरों द्वारा अपरदन तटीय भागों में सीमित है। मृदा अपरदन और पोषक तत्वों के समाप्त हो जाने के कारण मृदा का समापन दोनों ही गंभीर बाधायें है। मृदा की उत्पादकता बढ़ाने के मार्ग में ये दोनों ही गंभीर समस्या है। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या की वृद्धि की तुलना में यह ज्यादा तेजी से बढ़ रही है।

20.8 मृदा संरक्षण

मृदा के संरक्षण में वे सब विधियाँ आती हैं जिनके द्वारा मृदा अपरदन रोका जाता है। यदि मृदा बह गई है या उड़ गई है तो उसे पुनः स्थापित करना आसान नहीं है। इसलिये मृदा संरक्षण में सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि मृदा अपने ही स्थान पर सुरक्षित बनी रहे। इसके लिये विभिन्न प्रदेशों में कृषि पद्धतियों में सुधार किये गये हैं। पहाड़ी ढलानों पर समोच्चरेखीय जुताई और सीढ़ीदार खेती की जाती है। मृदा संरक्षण की ये बड़ी आसान विधियाँ हैं। वृक्षों की कतार या रक्षक–मेखला बनाकर मरुस्थलीय प्रदेशों में पवन–अपरदन से खेतों की रक्षा की जाती है। हिमालय के ढ़लानों और अपवाह क्षेत्र, झारखण्ड में ऊपरी दामोदर घाटी और दक्षिण में नीलगिरि की पहाड़ियों पर वनरोपण किया गया है। इसके द्वारा धरातलीय जल के तेज बहाव को कम किया गया है जिससे मृदा अपने ही स्थान पर बँधी रहती है। खड्ड अपने विशाल आकार, गहराई और खड़े ढलानों के लिये जाने जाते हैं। ऐसी उत्खात भूमि का उद्धार करने के लिये केन्द्रीय मृदा संरक्षण बोर्ड ने तीन अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की हैः (1) राजस्थान में कोटा, (2) उत्तर प्रदेश में आगरा और (3) गुजरात में बलसार। इन केन्द्रों का दायित्व है कि वे खड्ड भूमि के उद्धार के लिये क्षेत्र अनुसार अनुकूल विधियाँ बताएँ। भेड़, बकरी और अन्य पशुओं द्वारा अतिचराई भी आंशिक रूप से भूमि अपरदन के लिये उत्तरदायी है। इस कारक द्वारा अपरदन जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान और कर्नाटक में ज्यादा होता है। मृदा का समापन खाद और उर्वरको की मदद से रोका जा सकता है।

- भारत में पाई जाने वाली छः मुख्य प्रकार की मृदाएँ है : जलोढ़, काली, लाल, लैटराइट, मरुस्थलीय एवं पर्वतीय।

टिप्पणी

- मृदा अपरदन को भौतिक एवं सामाजिक कारक निर्धारित करते हैं। भौतिक कारक हैं : वर्षा की अपरदनकारी शक्ति, मृदा की अपनी कटाव क्षमता, आवर्ती बाढ़ों की तीव्रता और ढ़लान की लम्बाई एवं तीव्रता; सामाजिक कारक है : वनों की कटाई, अतिचराई, भूमि उपयोग की प्रकृति और खेती करने की विधियाँ।
- मृदा अपरदन के प्रमुख रूप है : खड्ड, अवनालिकायें, भूस्खलन एवं परत–अपरदन।
- मृदा संरक्षण की विधियाँ हैं : समोच्चरेखीय जुताई और सीढ़ीदार खेती, वृक्षों की कतार या रक्षक–मेखला बनाना, वनरोपण, अतिचराई को रोकना एवं खादों और उर्वरकों का प्रयोग।

पाठगत प्रश्न 20.3

1. (क) जलोढ़ मृदा के दो प्रमुख प्रदेशों के नाम बताइये –

   (i) _____ (ii) _____

   (ख) लाल मृदा में लाल रंग किस कारण होता है?

   _____

2. (क) मृदा के अपरदन के तीन प्रमुख प्रकारों के नाम बताइये:

   (i) _____ (ii) _____ (iii) _____

3. मृदा संरक्षण की किन्हीं चार विधियों के नाम बताइये –

   (क) _____ (ख) _____

   (ग) _____ (घ) _____

20.9 भारत में प्राकृतिक वनस्पति

पौधों की जातियों, जैसे पेड़ों, झाड़ियों, घासों, बेलों, लताओं आदि के समूह, जो किसी विशिष्ट पर्यावरण में एक दूसरे के साहचर्य में विकसित हो रहे हैं, को प्राकृतिक वनस्पति कहते हैं। इसके विपरीत वन से तात्पर्य पेड़ों व झाड़ियों से युक्त एक विस्तृत भाग से है जिसका हमारे लिये आर्थिक महत्व है। इस प्रकार प्राकृतिक वनस्पति की तुलना में वन का अर्थ भिन्न है।

भारत में जलवायु दशाओं की भिन्नता के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति पायी जाती हैं। प्रत्येक पौधे को अपने विकास के लिये

टिप्पणी

निश्चित तापमान व वर्षा की आवश्यकता होती है। पश्चिमी घाट में उष्ण आर्द्र जलवायु के कारण ही उष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वनस्पति पाई जाती है। शीतोष्ण सदाहरित वनस्पति उत्तर पूर्वी भारत में मिलती है, जबकि कंटीली या मरुस्थली या अर्द्ध मरुस्थली वनस्पति राजस्थान के मरुस्थल व उसके आस–पास के भागों में पाई जाती है। भारत के मध्यवर्ती भागों में पर्णपाती वनस्पति वहां मौजूद मध्यम जलवायु दशाओं के कारण विकसित हुई है।

प्रमुख वनस्पति प्रकार

भारत में पायी जाने वाली प्राकृतिक वनस्पति को सामान्यतया निम्न प्रकारों में बांटा जाता है :–

1. आर्द्र उष्णकटिबन्धीय सदाहरित एवं अर्द्ध सदाहरित वनस्पति
2. उष्णकटिबन्धीय आर्द्र पर्णपाती वनस्पति
3. उष्णकटिबन्धीय शुष्क वनस्पति
4. ज्वारीय वनस्पति तथा
5. पर्वतीय वनस्पति

आइये, अब इनके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें –

1. आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वनस्पति

ये उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन हैं जिन्हें उनकी विशेषताओं के आधार पर निम्न दो प्रकारों में बांटा जाता है :–

(क) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय सदाबहार वनस्पति : यह उन प्रदेशों में पायी जाती है जहां वार्षिक वर्षा 300 से.मी. से अधिक तथा शुष्क ऋतु बहुत छोटी होती है। पश्चिमी घाट के दक्षिणी भागों, केरल व कर्नाटक तथा अधिक आर्द्र उत्तर पूर्वी पहाड़ियों में इस प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। यह विषुवतीय वनस्पति से मिलती जुलती है। यह वनस्पति, अत्यधिक कटाई से नष्ट प्राय हो गई है। इस प्रकार की वनस्पति की प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(i) ये वन घने हैं तथा लम्बे सदा हरित पेड़ों से युक्त हैं। पेड़ों की लम्बाई अक्सर 60 मीटर या इससे भी अधिक होती है।

(ii) प्रति इकाई क्षेत्र पर पौधों की जातियां इतनी अधिक हैं कि उनका वाणिज्यिक उपयोग नहीं हो पाता।

(iii) महोगनी, सिनकोना, बांस तथा ताड़, इन वनों में पाये जाने वाले खास पेड़ हैं। पेड़ों के नीचे झाड़ियों, बेलों, लताओं आदि का सघन मोटा जाल पाया जाता है। घास प्रायः अनुपस्थिति है।

टिप्पणी

(iv) इन पेड़ों की लकड़ी अधिक कठोर व भारी होती है। अतः इन्हें काटने व लाने ले जाने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

(ख) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय अर्द्ध सदाहरित वनस्पति : यह आर्द्र सदाहरित वनस्पति तथा आर्द्र शीतोष्ण पर्णपाती वनस्पति के मध्यवर्ती भागों में पायी जाती है। इस प्रकार की वनस्पति मेघालय पठार, सह्याद्रि एवं अण्डमान व निकोबार द्वीपों में मिलती है। यह वनस्पति 250 से.मी. से 300 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों तक ही सीमित है। इनकी प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(i) यह वनस्पति आर्द्र सदाहरित वनों से कम घनी है।

(ii) इन वनों की लकड़ी दानेदार अच्छी किस्म की होती है।

(iii) रोजवुड, ऐनी तथा तेलसर सह्याद्रि के वनों के प्रमुख वृक्ष हैं। चम्पा, जून तथा गुरजन, असम व मेघालय तथा आइरनवुड, एबोनी व लॉरेल अन्य प्रदेशों के प्रमुख वृक्ष हैं।

(iv) स्थानान्तरी कृषि एवं अत्यधिक शोषण से इन वनों का अत्यधिक ह्रास हुआ है।

2. आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वनस्पति

यह भारत की सबसे विस्तृत वनस्पति पेटी है। इस प्रकार की वनस्पति 100 से.मी. से 200 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पायी जाती है। इसमें सह्याद्रि, प्रायद्वीपीय पठार का उत्तरी पूर्वी भाग, शिवालिक में हिमालय पदीय पहाड़ियां, भाबर तथा तराई क्षेत्र शामिल हैं। इस प्रकार की वनस्पति की प्रमुख विशेषतायें है :–

(i) पर्णपाती वनस्पति क्षेत्र में वृक्ष वर्ष में एक बार शुष्क ऋतु में अपनी पत्तियां गिरा देते हैं।

(ii) यह खासतौर पर मानसूनी वनस्पति है जिसमें वाणिज्यिक महत्व के पेड़ों की किस्में सदाहरित वनों से अधिक पायी जाती है।

(iii) सागवान, साल, चन्दन, शीशम, बेंत तथा बांस इन वनों के प्रमुख वृक्ष हैं।

(iv) लकड़ी के लिये पेड़ों की अन्धाधुंध कटाई से इन वनों का अत्यधिक विनाश हुआ है।

3. शुष्क उष्णकटिबन्धीय वनस्पति

इस प्रकार की वनस्पति को निम्न दो वर्गों में बांटा जाता है :

(क) शुष्क पर्णपाती : यह वनस्पति 70 से 100 सें.मी. वार्षिक वर्षा पाने वाले भागों में

टिप्पणी

पायी जाती है। इन प्रदेशों में उत्तर प्रदेश के कुछ भाग, उत्तरी व पश्चिमी मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, आँध्र प्रदेश, कनार्टक तथा तमिलनाडु के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों में शुष्क ऋतु लम्बी होती है तथा वर्षा हल्की व चार महीनों तक सीमित होती है इसकी प्रमुख विशेषतायें हैं–

(i) पेड़ों के झुरमुटों के बीच विस्तृत घास भूमियां आम तौर से पायी जाती हैं। सागवान इस प्रकार की वनस्पति का प्रधान वृक्ष है।

(ii) पेड़ अपनी पत्तियां लम्बी शुष्क ऋतु में गिरा देते हैं।

(ख) शुष्क उष्णकटिबन्धीय कंटीली वनस्पति : यह 70 सें.मी. से कम वार्षिक वर्षा पाने वाले भागों में पायी जाती है। इनमें भारत के उत्तरी व उत्तरी पश्चिमी भाग तथा सह्याद्रि के पवन विमुख ढाल शामिल हैं। इस प्रकार की वनस्पति की प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(i) यहां दूर–दूर तक फैले पेड़ों व झाड़ियों के झुरमुटों के बीच फैली निम्न किस्म की घास वाली विस्तृत भूमियां पायी जाती हैं।

(ii) बबूल, सेहुँड, कैक्टस आदि इस प्रकार की वनस्पति के सच्चे प्रतिनिधि वृक्ष हैं। जंगली खजूर, कंटीले प्रकार के अन्य वृक्ष व झाड़ियां जहां–तहां पायी जाती हैं।

4. ज्वारीय वनस्पति

इस प्रकार की वनस्पति मुख्य रूप से गंगा, महानदी, गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के डेल्टा प्रदेशों में पाई जाती है, जहां ज्वार–भाटों व ऊंची समुद्री लहरों के कारण खारे जल की बाढ़ें आती रहती हैं। मैनग्रोव इस प्रकार की प्रतिनिधि वनस्पति है। सुन्दरी ज्वारीय वनों का प्रमुख वृक्ष है। यह पश्चिमी बंगाल के डेल्टा के निचले भाग में बहुतायत से पाया जाता है। यही कारण है कि इन्हें सुन्दरवन कहते हैं। यह अपनी कठोर व टिकाऊ लकड़ी के लिये जाना जाता है।

5. पर्वतीय वनस्पति

उत्तरी तथा प्रायद्वीपीय पर्वतीय श्रेणियों के तापमान तथा अन्य मौसमी दशाओं में अन्तर होने के कारण इन दो पर्वत समूहों की प्राकृतिक वनस्पति में अन्तर पाया जाता है। अतः पर्वतीय वनस्पति को दो भागों प्रायद्वीपीय पठार की पर्वतीय वनस्पति तथा हिमालय श्रेणियों की पर्वतीय वनस्पति के रूप में बांटा जा सकता है।

टिप्पणी

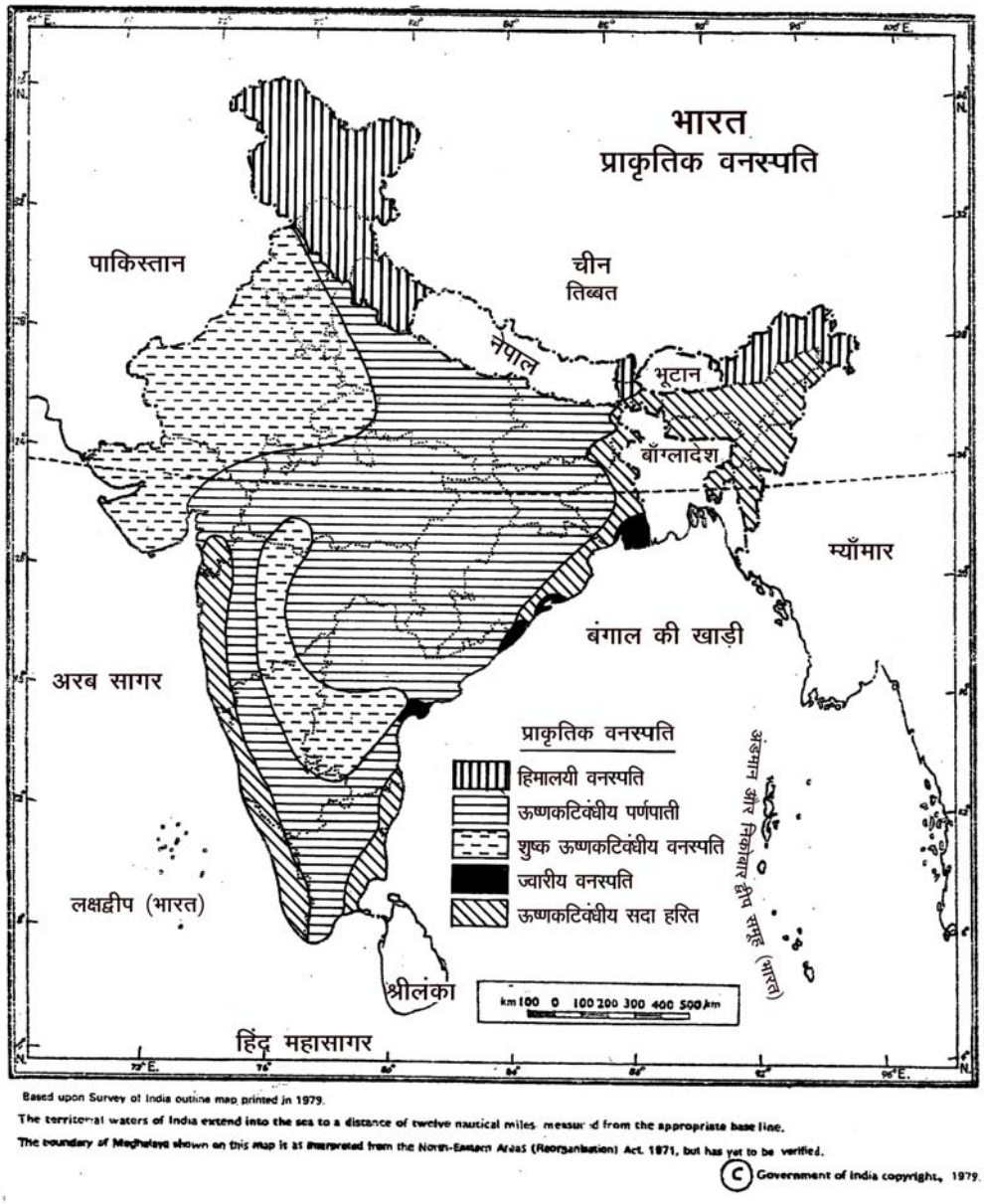

चित्र 20.3 भारत : प्राकृतिक वनस्पति के प्रकार

(क) प्रायद्वीपीय पठार की पर्वतीय वनस्पति

पठारी प्रदेश के अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में नीलगिरि, अन्नामलाई व पालनी पहाड़ियां, पश्चिमीघाट में महाबलेश्वर, सतपुड़ा तथा मैकाल पहाड़ियां शामिल हैं। इस प्रदेश की वनस्पति की महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं :–

(i) अविकसित वनों या झाड़ियों के साथ खुली हुई विस्तृत घास भूमियां पायी जाती हैं।

(ii) 1500 मीटर से कम ऊंचाई पर पाये जाने वाले आर्द्र शीतोष्ण वन कम सघन है। अधिक ऊंचाई पर पाये जाने वाले वनों की सघनता ज्यादा है।

टिप्पणी

(iii) इन वनों में पेड़ों के नीचे वनस्पति का जाल पाया जाता है। जिनमें परपोषी, पौधे, काई व बारीक पत्तियों वाले पौधे प्रमुख हैं।

(iv) मैग्नोलिया, लॉरेल एवं एल्म सामान्य वृक्ष हैं।

(v) सिनकोना तथा यूकेलिप्टस के वृक्ष विदेशों से लाकर लगाये गये हैं।

(ख) हिमालय श्रेणियों की पर्वतीय वनस्पति

हिमालय पर्वतीय प्रदेश में बढ़ती हुई ऊंचाईयों पर भिन्न प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। इसे निम्न प्रकारों में बांटा जा सकता है :–

(1) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वन शिवालिक श्रेणियों के पदीय क्षेत्रों, भाबर तथा तराई क्षेत्रों में 1000 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। हम इन वनों के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं।

(2) आर्द्र शीतोष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वन 1000 से 3000 मीटर की ऊंचाईयों के मध्यवर्ती क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन वनों की महत्वपूर्ण विशेषतायें निम्न हैं :–

(i) ये घने वन लम्बे पेड़ों से युक्त हैं।

(ii) चेस्टनट तथा ओक पूर्वी हिमालय प्रदेश के प्रधान वृक्ष हैं; जबकि चीड़ और पाइन पश्चिमी हिमालय प्रदेश में प्रधानता से पाये जाने वाले वृक्ष हैं।

(iii) साल निम्न ऊंचाई वाले क्षेत्रों का महत्वपूर्ण वृक्ष है।

(iv) देवदार, सिलवर फर तथा स्प्रूस 2000 से 3000 मीटर के मध्यवर्ती भागों के प्रधान वृक्ष हैं। इन ऊंचाईयों पर पाये जाने वले वन कम ऊंचाई के वनों की तुलना में कम घने हैं।

(v) स्थानीय व्यक्तियों के लिये इन वनों का आर्थिक महत्व अधिक है।

3. शुष्क शीतोष्ण वनस्पति इस पर्वतीय प्रदेश के अधिक ऊंचाई वाले पहाड़ी ढालों पर पायी जाती है। यहां तापमान कम तथा वर्षा 70 से 100 सें.मी. होती है। इस वनस्पति की महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं :–

(i) यह वनस्पति भूमध्यसागरीय वनस्पति से मिलती जुलती हैं।

(ii) जंगली जैतून और बबूल कठोर व मोटी सवाना घास के साथ उगे प्रमुख वृक्ष हैं।

(iii) कहीं–कहीं ओक तथा देवदार के वृक्ष भी पाये जाते हैं।

4. अल्पाइन वनस्पति 3000 से 4000 मीटर की ऊंचाईयों के मध्य पायी जाती है। इन वनों की प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(i) ये कम घने वन हैं।

टिप्पणी

(ii) सिल्वर फर, जुनी फर, बर्च, पाइन तथा राडॉनड्रान इन वनों के प्रमुख वृक्ष हैं। ये सभी वृक्ष आकार में छोटे हैं।

(iii) अल्पाइन चारागाह इससे भी अधिक ऊंचाई वाले भागों में मिलते हैं।

(iv) हिम रेखा की ओर बढ़ने पर पेड़ों की ऊंचाई क्रमशः कम होती जाती है।

- प्राकृतिक वनस्पति से तात्पर्य पौधों की जातियों के समूह से है जो किसी विशिष्ट पर्यावरण में एक दूसरे के साहचर्य में विकसित हुये हैं।
- विभिन्न प्रदेशों की वनस्पति पर तापमान एवं वर्षा का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।
- प्रमुख वनस्पति पेटियों में आर्द्र उष्णकटिबन्धीय सदाहरित, आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती, शुष्क पर्णपाती, ज्वारीय तथा पर्वतीय वनस्पति जो ऊंचाइयों के अनुसार उष्णकटिबंधीय वनस्पति से लेकर अल्पाइन वनस्पति तक की वनस्पति को संजोये हुये हैं, शामिल हैं।

पाठगत प्रश्न 20.4

1. नीचे दिये गये कथनों के लिये उपयुक्त पारिभाषिक शब्द दीजिए :–

   (क) पौधों की जातियों का समूह जो विशिष्ट पर्यावरण में एक दूसरे के साहचर्य से विकसित हुआ है।

   _____

   (ख) सम्मिलित छाया वाले घने पेड़ों व झाड़ियों से ढका हुआ एक विस्तृत क्षेत्र।

   _____

2. नीचे दिये गये पेड़ों की जातियों को दिये गये वनस्पति प्रकारों में बांटिए :–

   महोगनी, एबोनी, शीशम, सिनकोना, साल, ताड़, रोजवुड

   (क) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय सदाहरित _____

   (ख) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती _____

   (ग) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय अर्द्ध सदाहरित _____

3. नीचे दिये गये वार्षिक वर्षा के प्रदेशों में पायी जाने वाली वनस्पति प्रकार का नाम बताइए :–

   (क) 300 से.मी. से अधिक _____

टिप्पणी

(ख) 200 से 300 से.मी. _____

(ग) 100 से 200 से.मी. _____

4. आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वनस्पति की दो सबसे महत्वपूर्ण विशेषतायें बताइए:–

(क) _____ (ख) _____

आपने क्या सीखा

भूमि हमारा मौलिक संसाधन है। यह उत्पादन का प्रमुख आर्थिक कारक, सामाजिक सम्मान, सम्पदा और राजनीतिक शक्ति की आधारशिला है। भारत कृषि भूमि में संपन्न है। भारत का भूमि–मानव अनुपात जापान और नीदरलैंड से अधिक है जबकि यह आस्ट्रेलिया, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका से कम है।

भूमि उपयोग एक गतिमान प्रक्रिया है। कई कारकों में बदलाव के कारण समयानुसार इसमें भी बदलाव होते रहते हैं। इनमें से जनसंख्या वृद्धि, फसल व्यवस्था और तकनीक में बदलाव प्रमुख हैं। भूमि का अधिकतर भाग कृषि कार्यों में उपयोग किया जाता है। भारत कई तरह की भूमि संबंधी समस्याओं का सामना कर रहा है। ये है भूमिरक्षण, भूमि का स्वामित्व और वनों की कटाई। इन समस्याओं के समाधान हेतु भारत दो तरह के उपाय – भूमि उद्धार और भूमि सुधार अपना रहा है। असंगठित पदार्थों से बनी पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत को मृदा कहते हैं। भारत की मृदाओं को छः प्रमुख वर्गों में बांटा गया है। ये हैं जलोढ़, काली, लाल, लैटराइट, मरूस्थलीय और पर्वतीय मृदाएँ। भूमि की तरह मृदा की भी समस्याएँ हैं, जैसे मृदा अपरदन और मृदा का समापन। भारत में मृदा संरक्षण की अपनाई गई प्रमुख विधियाँ हैं: समोच्चरेखीय जुताई, सीढ़ीदार खेती, रक्षक–मेखला बनाना, वनरोपण आदि।

प्राकृतिक वनस्पति से तात्पर्य पौधों की जातियों के समूह से है जो विशिष्ट पर्यावरण में एक दूसरे के साहचर्य में विकसित होते हैं। जलवायु दशाओं की विभिन्नता के फलस्वरूप प्राकृतिक वनस्पति में भी विभिन्नता पायी जाती है। भारत में पाये जाने वाले प्रमुख वनस्पति प्रकारों में आर्द्र उष्णकटिबंधीय सदाहरित, आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती, शुष्क पर्णपाती ज्वारीय वन तथा पर्वतीय वनस्पति शामिल हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. भारत के भूमि उपयोग के प्रमुख लक्षण क्या हैं?

2. भारत के विभिन्न प्रकार के भूमि उपयोगों का संक्षिप्त वर्णन करिये।

टिप्पणी

3. भारत में पाई जाने वाली प्रत्येक प्रकार की मृदा की दो प्रमुख विशेषतायें बताइये।

4. मृदा संरक्षण के लिये अपनाये गये विभिन्न उपायों का वर्णन करिये।

5. निम्नलिखित में अन्तर बताइयेः–

   (क) लैटराइट मृदा और लाल मृदा

   (ख) मृदा अपरदन और मृदा संरक्षण

   (ग) नवीन जलोढ़क एवं प्राचीन जलोढ़क

6. प्राकृतिक वनस्पति को परिभाषित कीजिये। वन इससे किस प्रकार भिन्न हैं?

7. ज्वारीय वनस्पति तथा पर्वतीय वनस्पति के बीच अन्तर बताइये।

8. कारण दीजिए–

   (क) हिमालय क्षेत्र की वनस्पति पट्टी ऊँचाई के आधार पर परिभाषित होती है न कि क्षैतिज।

   (ख) शुष्क प्रदेश कांटेदार वृक्ष एवं झाड़ियों से आच्छादित है।

9. भारत के रेखा मानचित्र में निम्नलिखित की स्थिति दर्शाइए तथा उनके नाम लिखियेः–

   (क) जलोढ़ मृदा

   (ख) लैटेराइट मृदा

   (ग) मरूस्थलीय मृदा

   (घ) ज्वारीय वन तथा उष्णकटिबन्धीय कांटेदार वन

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

20.1

1. भूमि–मानव अनुपात वह अनुपात है जो वास योग्य भूमि के क्षेत्रफल और उस पर रहने वाले लोगों की कुल संख्या के बीच होता है।

2. आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमेरिका, चिली, डेनमार्क और मेक्सिको (कोई चार)

3. जापान, नीदरलैंड, मिस्र, यूनाइटेड किंगडम, चीन, इजराइल (कोई चार)

टिप्पणी

20.2

1. चम्बल घाटी, छोटानागपुर, गुजरात, पंजाब हिमालय के निम्न भाग (कोई तीन)
2. वनों का विनाश
3. (क) भौमिक (भूमि उद्धार), (ख) सामाजिक (भूमि सुधार)
4. राजस्थान

20.3

1. (क) (i) सतलुज, गंगा और ब्रह्मपुत्र की घाटियाँ (ii) दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार का सीमान्त क्षेत्र अर्थात् तटीय पट्टियाँ

   (ख) लोहे के यौगिकों के कारण
2. (क) (i) अवनालिका अपरदन, (ii) भूस्खलन, (iii) परत–अपरदन (iv) पवन अपरदन (कोई तीन)

   (ख) (i) समोच्चरेखीय जुताई, (ii) सीढ़ीदार खेती (iii) रक्षक–मेखला बनाना, (iv) वनरोपण

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 20.1 देखिये
2. अनुच्छेद 20.2 देखिये
3. अनुच्छेद 20.3 देखिये
4. अनुच्छेद 20.4 देखिये
5. (क) अनुच्छेद 20.6 के भाग 4 और 3 देखिये

   (ख) अनुच्छेद 20.7 और 20.8 देखिये

   (ग) अनुच्छेद 20.6 का भाग 1 देखिये
6. अनुच्छेद 20.9 देखिये
7. अनुच्छेद 20.9 के भाग 4 और 5 देखिये
8. अनुच्छेद 20.9 का भाग 5 (ख) तथा 3 देखिये।
9. (i), (ii) एवं (iii) के लिए चित्र संख्या 20.2 देखिये (iv) के लिए चित्र संख्या 20. 3 देखिये।